प्रवचन-१५३, श्लोक-२२१-२२५, गाथा-१३५,
शुक्रवार, ज्येष्ठ शुक्ल १, दिनांक १३-०६-१९८०

१३५ गाथा।

मोक्खंगयपुरिसाणं गुणभेदं जाणिऊण तेसिं पि।
जो कुणदि परमभत्तिं ववहारणयेण परिकहियं।।१३५।।

तेसिं पि में जोर है। पहले निश्चय है और इनको भी करते हैं। निश्चय भक्ति तो है, उसके साथ व्यवहार **तेसिं पि** इनकी भी।

जो मुक्तिगत हैं उन पुरुष की भक्ति जो गुणभेद से।
करता, वही व्यवहार से निर्वाणभक्ति वेद रे॥१३५॥

टीका : जो पुराण पुरुष... हो गये। पुराण पुरुष हो गये। **समस्त कर्मक्षय के उपाय के हेतुभूत...** समस्त कर्म के क्षय के उपाय के हेतुभूत! **कारणपरमात्मा की अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयपरिणति से...** आहाहा! मार्ग यह है। निश्चय यह है। पुराण पुरुष अनन्त हो गये, उन्होंने सर्व कर्मक्षय के उपाय के हेतुभूत कारणपरमात्मा को अभेद अनुपचार-उपचार नहीं, निश्चयरत्नत्रय परिणति, उसे **सम्यक्रूप से आराधना करके सिद्ध हुए...** इसमें व्यवहार नहीं डाला। अनन्त सिद्ध हुए, वे निश्चय से सिद्ध हुए हैं। आहाहा! कारणपरमात्मा को सेवन कर। अपना जो आत्मा त्रिकाली कारणभगवान, उसे अभेद रीति से सम्यक् प्रकार से-अनुपचार रत्नत्रयपरिणति से आराधकर सिद्ध हुए। अर्थात् अभी तक सिद्ध हुए, उसकी पद्धति भी रखी कि पद्धति तो यह है। पश्चात् व्यवहार आवे, पूर्ण नहीं, उसे **तेसिं पि** अर्थात् उस निश्चयवाले को भी पूर्ण न हो, तब राग होवे तब आता है। अकेले व्यवहाररत्नत्रय की बात यहाँ नहीं है। ऐसे पुरुष सम्यक्रूप से आराधकर सिद्ध हुए।

उनके केवलज्ञानादि शुद्ध गुणों के भेद को जानकर... आहाहा! सिद्धभक्ति है न? भेद की, व्यवहार। **केवलज्ञानादि शुद्ध गुणों के भेद को जानकर निर्वाण की परम्पराहेतुभूत...** मोक्ष के परम्परा हेतुभूत व्यवहार। परन्तु जिसे निश्चय है, उसे यह व्यवहार की बात है। **निर्वाण की परम्पराहेतुभूत ऐसी परम भक्ति जो आसन्नभव्य जीव करता है,...** (जिसका) निकट संसार है-मोक्ष प्राप्ति की तैयारी है, ऐसे जीव करते हैं। **उस**

मुमुक्षु को व्यवहारनय से निर्वाणभक्ति है। व्यवहारनय से (निर्वाणभक्ति है)। निश्चय है, परन्तु पूर्ण नहीं है, इसलिए व्यवहार का विकल्प है। इससे पुराण पुरुष जो सिद्ध हो गयें, उनकी भक्ति करते हैं। अकेले व्यवहार की बात नहीं है। व्यवहार से होगा, भगवान की भक्ति से मुक्ति होगी-ऐसा नहीं।

इसीलिए तो ऐसा लिया कि **पुराण पुरुष समस्त कर्मक्षय के उपाय के हेतुभूत कारणपरमात्मा की अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयपरिणति से सम्यक्रूप से आराधना करके...** आहाहा! अकेला भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ स्वरूप, उसे आराधकर, उसे पकड़कर, उसकी सेवा-अन्दर एकाग्रता करके मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। आहाहा! उनकी परम्परा हेतुभूत, ऐसी परमभक्ति जो व्यवहार, वह आसन्न भव्य जीव करता है। वह आसन्न भव्य जीव लिये वापस। उसमें **तेसिं पि** था न? उस समकिती को भी यह व्यवहारभक्ति है। यह अकेले आसन्न भव्य जीव करते हैं। आहाहा! अपने आत्मा का अन्तर कारणपरमात्मा की तो सेवा और आराधना है, परन्तु राग बाकी है, इसलिए जीव, आसन्न भव्य जीव-अल्प काल में जिन्हें मुक्ति है, उस मुमुक्षु को व्यवहारनय से निर्वाणभक्ति है। इसमें वापस व्यवहार में विवाद निकाले कि व्यवहार करते-करते निश्चय होगा।

मुमुक्षु :- व्यवहार का अभाव करके होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- व्यवहार आता है।

यहाँ तो मात्र इतना सिद्ध करना है कि जो मोक्षगत पुरुष हैं, उन्हें जानकर **तेसिं पि** अपनी (भक्ति) तो करता है, परन्तु उनकी भी करता है - ऐसा लिया। निश्चय के साथ व्यवहार की बात है। समझ में आया? आहाहा! यह तो वाद-विवाद से पार पड़े, ऐसा नहीं है। स्व-आश्रय बिना तीन काल में मुक्ति नहीं है। एक ही सिद्धान्त। समकित भी स्व-आश्रय से, सम्यग्ज्ञान भी स्व-आश्रय से, सम्यक्चारित्र स्व-आश्रय से, शुक्लध्यान स्व-आश्रय से, केवलज्ञान स्व-आश्रय से, सिद्ध भी स्व-आश्रय से। आहाहा! अनादि का एक ही नियम। जब तक उसके अन्दर रह नहीं सकता और पूर्ण न हो, उसे भी ऐसी एक भक्ति व्यवहार की-सिद्ध की आती है - ऐसी बात यहाँ बतलानी है। परन्तु वह परम्परा हेतु कहा, उसका अर्थ यह। वह अशुभ से टलता है और फिर शुभ को टालेगा और स्वरूप में रमणता करेगा, तब मुक्ति होगी। परम्परा हेतु कहा न? अकेली परम्परा हेतुभूत नहीं। जिसे निश्चय

की खबर नहीं है, चैतन्य वस्तु की खबर नहीं है, उसे परम्परा हेतुभूत नहीं है। आहाहा! है न?

जिसके **केवलज्ञानादि शुद्ध गुणों के भेद को जानकर...** जानकर ज्ञान करता है। **निर्वाण की परम्पराहेतुभूत ऐसी परम भक्ति...** आहाहा! व्यवहार को भी यहाँ परमभक्ति कहा। आहाहा! परमभक्ति। विषय परम भक्ति का है न? ऊपर नाम ही इसका यह है न? 'परमभक्ति अधिकार' अर्थात् जहाँ निश्चय आत्मा का आनन्द, निर्विकल्प-रागरहित चैतन्य आनन्दकन्द प्रभु का अनुभव करे; उसे बाकी रहे हुए राग में जो अनन्त सिद्ध, अभेद अनुपचार से जो मुक्ति प्राप्त हुए, उनकी स्वयं शुभराग की भक्ति करे, इतनी यहाँ बात है। आहाहा!

श्लोक-२२१

[अब, इस १३५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज छह श्लोक कहते हैं:]

(अनुष्टुप्)

उद्धूत-कर्मसन्दोहान् सिद्धान् सिद्धि-वधूधवान्।
सम्प्राप्ताष्टगुणैश्वर्यान् नित्यं वन्दे शिवालयान्।।२२१।।

(वीरछन्द)

कर्म विनाशक सिद्धिवधूपति गुण संपति को प्राप्त अहो!
उन सिद्धों को वन्दन करता मैं कल्याण निकेतन जो॥२२१॥

[श्लोकार्थः] जिन्होंने कर्मसमूह को खिरा दिया है, जो सिद्धिवधू के (मुक्तिरूपी स्त्री के) पति हैं, जिन्होंने अष्ट गुणरूप ऐश्वर्य को संप्राप्त किया है तथा जो कल्याण के धाम हैं, उन सिद्धों को मैं नित्य वन्दन करता हूँ॥२२१॥

श्लोक- २२१ पर प्रवचन

[अब, इस १३५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज छह श्लोक कहते हैं:]

उद्धूत-कर्मसन्दोहान् सिद्धान् सिद्धि-वधूधवान्।
सम्प्राप्ताष्टगुणैश्वर्यान् नित्यं वन्दे शिवालयान्।।२२१।।

श्लोकार्थः जिन्होंने कर्मसमूह को खिरा दिया है,... आहाहा! व्यवहार की भाषा है। बाकी स्वरूप में स्थिर होता है, वह वह वस्तु खिर जाती है। कर्म की पर्यायरूप है, वह आत्मा की ओर जहाँ अन्दर स्थिर होता है (तो) वह कर्मरूप पर्याय है, वह अकर्मरूप पर्याय हो जाती है। नाश तो दूसरा कुछ होता नहीं। जो कर्म पर्यायरूप थी, वह पर्याय अकर्मरूप हो गयी। इसका नाम कर्म का नाश किया, ऐसा कहा गया है। आहाहा! **जिन्होंने कर्मसमूह को...** कर्म का समूह। आठ कर्म का ढ़ेर। आहाहा! उसे खिरा डाला है। टाल दिया है - ऐसा नहीं कहा; खिरा डाला है। जैसे पंख को खिरा देता है, वैसे खिरा डाला है। आहाहा!

जो सिद्धिवधू के (मुक्तिरूपी स्त्री के) पति हैं,... आहाहा! सिद्ध भगवान की बात करते हैं। जो सिद्धिरूपी मुक्ति, उसकी जो स्त्री-परिणति, उसके वे पति हैं। आहाहा! **जिन्होंने अष्ट गुणरूप ऐश्वर्य को संप्राप्त किया है...** जिन्होंने आठ गुणरूप ऐश्वर्य को संप्राप्त किया है। प्राप्त तो अनन्त गुण किये हैं, परन्तु मुख्य आठ व्यवहार में लिये। **अष्ट गुणरूप ऐश्वर्य को संप्राप्त किया है तथा जो कल्याण के धाम हैं,...** आहाहा! 'स्वयं ज्योति सुखधाम।' परमात्मा सिद्ध कल्याण के स्थान हैं, कल्याण के क्षेत्र-कल्याण का धाम है। आहाहा! **उन सिद्धों को...** इस प्रकार पहिचानकर निश्चयसहित **मैं नित्य वन्दन करता हूँ।** नित्य वन्दन करता हूँ। तो यह तो व्यवहार है, परन्तु व्यवहार बीच में आता है अर्थात् प्रतिदिन आता है, इसलिए नित्य वन्दन करता हूँ-ऐसा कहा। प्रतिदिन आता है न? निश्चय में रह नहीं सकते, तब सुबह-शाम प्रतिक्रमण में आता है। इसलिए नित्य वन्दन करता हूँ - ऐसा कहा गया है। नित्य का अर्थ कहीं चौबीस घण्टे वन्दन करता हूँ—ऐसा नहीं है, परन्तु हमेशा सुबह-शाम आदि वन्दन करता हूँ। आहाहा! **मैं नित्य वन्दन करता हूँ।** ऐसे सिद्ध को। व्यवहार की गाथा। छह श्लोक लिये। आहाहा!

श्लोक-२२२

(आर्या)

व्यवहारनयस्येत्थं निर्वृत्तिभक्तिर्जिनोत्तमैः प्रोक्ता।
निश्चय-निर्वृति-भक्ती रत्नत्रय-भक्ति-रित्युक्ता।।२२२।।

(वीरछन्द)

इस प्रकार निर्वाण भक्ति व्यवहार कथन जिनराज कहें।
निश्चय से निर्वाण भक्ति रत्नत्रय भक्ति को कहते॥२२२॥

[श्लोकार्थः] इस प्रकार (सिद्धभगवन्तों की भक्ति को) व्यवहारनय से निर्वाणभक्ति जिनवरों ने कहा है; निश्चय-निर्वाणभक्ति रत्नत्रयभक्ति को कहा है॥२२२॥

श्लोक- २२२ पर प्रवचन

(श्लोक) २२२।

व्यवहारनयस्येत्थं निर्वृत्तिभक्तिर्जिनोत्तमैः प्रोक्ता।
निश्चय-निर्वृति-भक्ती रत्नत्रय-भक्ति-रित्युक्ता।।२२२।।

श्लोकार्थ : इस प्रकार (सिद्धभगवन्तों की भक्ति को) व्यवहारनय से निर्वाणभक्ति जिनवरों ने कहा है;... आहाहा! सिद्धभगवान की (भक्ति) व्यवहार से निर्वाणभक्ति कही है। **निश्चय-निर्वाणभक्ति रत्नत्रयभक्ति को कहा है।** परन्तु उसके साथ जो निश्चय है, उसे निर्वाणभक्ति रत्नत्रयभक्ति को कही है। आहाहा! व्यवहार कहा सही, परन्तु उसके साथ निश्चय है। निश्चय स्व-आश्रय के बिना की बात कहीं एक भी कदम आगे नहीं चलती। थोड़ी ऐसे कषाय को मन्द करे, शास्त्र का जानपना करे, उससे अन्दर जाया जाएगा (-ऐसा नहीं)। यह वस्तु तो निरपेक्ष है। आहाहा! यहाँ तो सिद्धभगवान की व्यवहार की भक्तिवाले को भी निश्चय निर्वाणभक्ति, रत्नत्रयभक्ति को कही है। उसकी भक्ति निश्चय से और उसे जो सिद्ध भगवन्त की (भक्ति) है, वह व्यवहार से कही है। दोनों कही। है? अकेली व्यवहार नहीं। आहाहा!

इस प्रकार (सिद्धभगवन्तों की भक्ति को) व्यवहारनय से निर्वाणभक्ति जिनवरों ने कहा है;... व्यवहार है - ऐसा जिनवरों ने कहा है। **निश्चय-निर्वाणभक्ति रत्नत्रयभक्ति को कहा है।** उन तीर्थंकरों ने निश्चय जो मोक्ष की भक्ति, वह निर्वाण रत्नत्रय भक्ति स्वयं की है, उसे कहा है। आहाहा! **निश्चय-निर्वाणभक्ति रत्नत्रयभक्ति को कहा है।** निश्चय रत्नत्रय अन्तर आश्रय, स्वभाव के आश्रय से, अनन्त गुण का सागर प्रभु, उसके आश्रय से जो भक्ति हो, उस भक्ति को निश्चयभक्ति कहा है। सिद्ध भगवान की भक्ति को व्यवहारभक्ति कहा है। आहाहा!

मुमुक्षु :- यह व्यवहार-निश्चय का...

पूज्य गुरुदेवश्री :- निश्चय है, उसे व्यवहार कहा है। राग बाकी है न? शाम-सबेरे भक्ति करे, प्रतिक्रमण करे, - ऐसा आता है न? उसमें वन्दन आता है। आहाहा! परन्तु यह बात लेकर। निश्चय निर्वाणभक्ति रत्नत्रयभक्ति को कहा है। उसे साथ में रखकर (व्यवहार की बात है)। आहाहा! निश्चय निर्वाणभक्ति अपनी रत्नत्रयभक्ति। सिद्ध की भक्ति नहीं। आहाहा! रत्नत्रय अपना जो निश्चयरत्नत्रय-सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उसकी भक्ति वह निश्चय निर्वाण की भक्ति है। आहाहा!

मुमुक्षु :- आपने सब ही निकाल डाला।

पूज्य गुरुदेवश्री :- निकाला। ऐसा है, वस्तुस्थिति ऐसी है। स्व के आश्रय बिना एक अंश भी निर्मलता संवर या निर्जरा प्रगट नहीं होती। मोक्ष तो एक ओर रहा, परन्तु संवर और निर्जरा (भी नहीं होती)। भगवान पूर्णानन्द का नाथ, अनन्त गुण की राशि, अनन्त शक्ति का संग्रहालय (है), उसका आश्रय लेकर निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होते हैं। इसके बिना पर के आश्रय से नहीं होते। निश्चय हुआ है, उसे व्यवहार बीच में आता है; इसलिए उसे परम्परा कहा गया है। साक्षात् तो यह है—निश्चय निर्वाणभक्ति-यह साक्षात् है। और व्यवहार परम्परा है अर्थात् कि वह व्यवहार-राग आता है, उसे छोड़कर स्थिर होगा। अब इसका अर्थ ऐसा करते हैं कि व्यवहार परम्परा हेतु है, वह निश्चय को प्राप्त करायेगा। ऐसा नहीं है। आहाहा! भाषा तो ऐसी है। व्यवहार, निर्वाण परम्परा को प्राप्त करायेगा ही।

मुमुक्षु :- परन्तु परम्परा का अर्थ उसका अभाव करके या उसे रखकर?

पूज्य गुरुदेवश्री :- उसका अभाव करके। निश्चय तो है, परन्तु यहाँ जरा राग की अस्थिरता आती है। पश्चात् उसका त्याग होकर अन्दर स्थिर होगा, तब मुक्ति होगी। आहाहा!

मुमुक्षु :- प्रचण्ड कर्मकाण्ड के बल से, आता है न प्रवचनसार में?

पूज्य गुरुदेवश्री :- कर्मकाण्ड संसार है। कर्मकाण्ड का ज्ञान करे। प्रवचनसार में कहा है। प्रवचनसार में अन्तिम अधिकार। प्रचण्ड कर्मकाण्ड से ज्ञानकाण्ड प्रगट होता है। यह तो निमित्त से कथन किया है। प्रवचनसार में अन्तिम भाग में है। प्रचण्ड कर्मकाण्ड से निर्वाणकाण्ड, मोक्ष-ज्ञानकाण्ड। यह भाई ने तो निकाल दिया। धर्मदास क्षुल्लक। सम्यग्ज्ञान दीपिका में यह बात ली है। यह निकाल दिया। प्रचण्ड कर्मकाण्ड से ज्ञानकाण्ड है, यह बात निकाल दी। प्रचण्ड कर्मकाण्ड को निकाल दिया। व्यवहार है, उसमें जानने में आवे। व्यवहार आता है, परन्तु व्यवहार आत्मा को लाभ करता है - ऐसा बिल्कुल नहीं है। परम्परा कहा, वह तो उस राग का अभाव करके करेगा, इसलिए उसे परम्परा कहा है, परन्तु निश्चय के बिना वह राग अकेला व्यवहार परम्परा हेतु हो—ऐसा तीन काल में नहीं होता। आहाहा! २२२ (श्लोक हुआ)।

श्लोक-२२३

(आर्या)

निःशेष-दोषदूरं केवल-बोधादि-शुद्धगुण-निलयम्।
शुद्धोपयोग-फल-मिति सिद्धत्वं प्राहु-राचार्याः ।।२२३।।

(वीरछन्द)

आचार्यों ने सिद्ध दशा को कहा सभी दोषों से दूर।
फल शुद्धोपयोग का, केवलज्ञान आदि गुण से भरपूर॥२२३॥

[श्लोकार्थः] आचार्यों ने सिद्धत्व को निःशेष (समस्त) दोष से दूर, केवलज्ञानादि शुद्ध गुणों का धाम और शुद्धोपयोग का फल कहा है॥२२३॥

श्लोक- २२३ पर प्रवचन

२२३ (श्लोक)।

निःशेष-दोषदूरं केवल-बोधादि-शुद्धगुण-निलयम्।
शुद्धोपयोग-फल-मिति सिद्धत्वं प्राहु-राचार्याः।।२२३।।

श्लोकार्थ : आहाहा! **आचार्यों ने...** आहाहा! भगवान ने कहा है, वैसे **आचार्यों ने सिद्धत्व को निःशेष (समस्त) दोष से दूर,...** समस्त दोष से दूर **केवलज्ञानादि शुद्ध गुणों का धाम...** आहाहा! सिद्धभगवान निःशेष दोष से दूर हैं। यह नास्ति से लिया। **केवलज्ञानादि शुद्ध गुणों का धाम...** यह अस्ति कही। यह अस्ति और नास्ति कही। दोष से दूर, यह नास्ति; गुणों से रहित, यह अस्ति। आहाहा! यह **शुद्ध गुणों का धाम और शुद्धोपयोग का फल कहा है।** आहाहा! यह मोक्ष, उस शुद्धोपयोग का फल कहा है। शुभोपयोग का फल मोक्ष नहीं है। निर्वाण-सिद्ध की व्यवहार भक्ति, वह कोई मोक्ष का कारण नहीं है। आहाहा! इतना स्पष्ट कथन, इसका गड़बड़ उठाकर अर्थ करना। आहाहा!

आचार्यों ने सिद्धत्व को निःशेष (समस्त) दोष से दूर,... निःशेष अर्थात् समस्त दोषों से दूर और **केवलज्ञानादि शुद्ध गुणों का धाम...** केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवल आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता—ऐसे अनन्त गुणों का धाम और उसे शुद्धोपयोग का फल (कहा है)। शुभराग से मुक्ति हो - यह तीन काल में नहीं है। शुभभाव आवे। बीच में बात की थी। निश्चयवाले को **तेसिं पि** उसे भी शुभभाव आवे, परन्तु वह मुक्ति का कारण नहीं है। आहाहा! यह **शुद्धोपयोग का फल कहा है।** केवलज्ञान और परमात्मपद शुद्धोपयोग का फल है; शुभराग का फल नहीं है। आहाहा! पंच महाव्रत, पाँच समिति, गुप्ति इत्यादि क्रियाकाण्ड का फल मुक्ति नहीं है। उसका फल बन्ध है। आहाहा! भारी कठिन काम। अभी तो यह चलता है। व्यवहार करो, व्यवहार करो। और वे श्रुतसागर तो यहाँ तक कहते हैं, अभी शुभयोग ही है। उन्होंने बात बाहर प्रसिद्ध की है। अर र! स्वरूप की सन्मुखता होने के भी योग्य नहीं - ऐसा कहा। आहाहा! अभी शुभयोग ही है। यहाँ कहते हैं कि शुभयोग, वह संसार है। आहाहा!

शुद्धोपयोग का फल कहा है। मोक्ष-केवलज्ञान, केवलदर्शनादि परमात्मपद शुद्धोपयोग का फल है। आहाहा! शुद्धोपयोग में शुभ और अशुभ का अभाव है। मात्र चैतन्य के अवलम्बन से, चैतन्य के अवलम्बन से जो उपयोग-व्यापार होता है, उसे यहाँ शुद्धोपयोग कहा है। मात्र चैतन्यस्वरूप के अवलम्बन से जो व्यापार हो, उसे यहाँ शुद्धोपयोग कहा है। वह शुद्धोपयोग एक ही मुक्ति का कारण है। बाकी कोई मुक्ति का कारण व्यवहार-फ्यवहार है नहीं। आहाहा! है या नहीं इसमें? तो भी विवाद और विसंवाद निकाला करते हैं। अनादि का स्वभाव है।

अन्दर भगवान चैतन्य परमेश्वर प्रभु परमात्मा विराजमान है। उसका आश्रय लेकर ही सम्यग्दर्शन से लेकर केवलज्ञान होता है। बाकी सब व्यवहार के कथन आते हैं, वे जानने के लिये (हैं)। व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। (समयसार) १२वीं गाथा । व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। जाननेयोग्य है; आदरनेयोग्य नहीं। है अवश्य; व्यवहार नहीं है - ऐसा नहीं है। व्यवहार नहीं है - ऐसा नहीं है। निश्चय पूर्ण न हो, तब तक व्यवहार होता है। आहाहा!

मुमुक्षु :- व्यवहार तो छठवें गुणस्थान तक ही होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री :- वहाँ तक होता है। कहने में कथन (ऐसा आता है)। वैसे तो व्यवहार ठेठ बारहवें (गुणस्थान) तक आता है। जब तक पूर्ण दशा न हो, तब तक। यहाँ बुद्धिपूर्वक में छठवें तक लिया जाता है। बाकी (तो) व्यवहार बारहवें गुणस्थान तक होता है। जहाँ केवलज्ञान का अभाव है। आहाहा! बारहवें गुणस्थान तक अशुद्धनय कहा है। अशुद्धनय का अर्थ व्यवहारनय कहा है। आहाहा! क्योंकि वहाँ अभी चार कर्मों का अभाव नहीं है। वीतरागता हुई है (परन्तु) अभी केवलज्ञान हुआ नहीं है। आहाहा! किसे? बारहवें गुणस्थान में वीतरागता हुई है; केवलज्ञान हुआ नहीं है, इसलिए उसे वहाँ तक व्यवहार और अशुद्धता कही है। आहाहा!

प्रश्न चला है कि अशुद्धनय है तो अशुद्धनय में मोक्ष का मार्ग कहाँ से आया वापस? वह अशुद्धनय है न? क्या कहा, समझ में आया? जब अशुद्ध उसे कहा, तुमने अशुद्धनय को बारहवें तक (कहा) तो इतने तक में अशुद्धनय में मोक्षमार्ग आया कहाँ? बापू! वह अशुद्धनय है, जितना राग, उस अपेक्षा से कहा, परन्तु स्वभाव के आश्रय से

जितना मोक्षमार्ग हुआ, वह तो मोक्षमार्ग है। अशुद्धनय में भी मोक्षमार्ग है - ऐसा कहना है। आहाहा! यह प्रश्न चला है कि बारहवें तक व्यवहारनय कहो, अशुद्धनय कहो और केवलज्ञान नहीं कहो। आहाहा! और मोक्ष का मार्ग कहो। बारहवें तक अशुद्धता होने पर भी पहले से मोक्षमार्ग कहते हो, अशुद्धता तो बारहवें तक रही है। व्यवहार तो वहाँ तक रहा है। भाई! बात वहाँ तक है, वह जाननेयोग्य है। बाकी आत्मा के आश्रय से जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुए हैं, उतना मोक्षमार्ग तो चौथे गुणस्थान से शुरु हो गया है। आहाहा!

अशुद्धनय की भूमिका में मोक्षमार्ग है, वह अशुद्धनय से नहीं है। आहाहा! वह बारहवें गुणस्थान तक अशुद्धनय की भूमिका है, व्यवहारनय की; परन्तु अन्तर में स्व का आश्रय है, उतना मोक्षमार्ग शुरु हो गया है। आहाहा! सब बात ली है। आचार्यों ने तो कोई बात बाकी नहीं रखी है। एक-एक बात को स्पष्ट करके (कहा है)। बारहवें तक तुम व्यवहारनय कहो, अशुद्ध कहो और फिर तुम मोक्षमार्ग राग से न पालो। राग से-व्यवहार से मोक्षमार्ग नहीं, तो उसे मोक्षमार्ग कहाँ से आया? समझ में आया? कि उसे मोक्षमार्ग स्व से आया। जितना पर का आश्रय रहा, उतनी अशुद्धता और व्यवहार कहने में आता है। आहाहा! परन्तु जितना अन्दर स्व-आश्रय हुआ, चिदानन्दस्वरूप भगवान आत्मा का अवलम्बन हुआ, उतना तो मोक्षमार्ग शुरु हो गया है। अशुद्धनय और व्यवहारनय की भूमिका में भी, व्यवहारनय से नहीं, परन्तु व्यवहारनय की भूमिका में स्व का आश्रय जो हुआ, वह मोक्षमार्ग शुरु हो गया है। आहाहा! समझ में आया? यह चर्चा चली है। आहाहा!

मुमुक्षु :- शुद्धनय और अशुद्धनय दोनों साथ में है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- दोनों साथ में है। पूर्ण नहीं है। कहा न? जब तक पूर्ण नहीं है, तब तक राग है और राग है, वह कहीं मोक्ष का कारण नहीं है; तो भी मोक्षमार्ग वहाँ नहीं है-ऐसा नहीं है। मोक्षमार्ग, वह कहीं राग है, वह मोक्षमार्ग नहीं है। आहाहा! ऐसा है।

स्व का माहात्म्य आना और स्व में अन्दर जाना, बापू! यह तो अलौकिक बातें हैं। जानपना थोड़ा हो, बोलना भी नहीं आवे, दूसरों को कहना भी नहीं आवे, परन्तु अन्दर (अन्तर्मुख होना) आवे। आहाहा! जहाँ सच्चिदानन्द प्रभु त्रिकाल निरावरण वस्तु अखण्ड पड़ी है, उसकी जहाँ दृष्टि हुई, वहाँ मोक्षमार्ग शुरु हो गया। आहाहा! भले व्यवहारनय रहा, भले उसे अशुद्धनय कहो। अशुद्धनय से मोक्षमार्ग नहीं है, अशुद्धनय की भूमिका में...

आहाहा! अन्दर में चैतन्य भगवान के आश्रय से मोक्षमार्ग शुरु हो गया है। आहाहा! अरे! इसमें कहाँ वाद और विवाद का प्रश्न है? यह सीधी बात है। आहाहा!

अपना भगवान परिपूर्ण विद्यमान है। परिपूर्ण वस्तु, वस्तु ही है, ऐसा कहा नहीं? सवेरे नहीं आया? वह जैसा है, वह वही है। वह जैसा है, वह वही है। वह दूसरे प्रकार से नहीं है। आहाहा! इसी तरह भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ जो है, वह है। उसे कोई पर की अपेक्षा है नहीं। आहाहा!

यहाँ यह कहा। यहाँ तो क्या लेना है? कि **आचार्यों ने...** सिद्ध भगवान ने समस्त दोष से दूर कहा, (यह) नास्ति से बात की। **केवलज्ञानादि शुद्ध गुणों का धाम...** कहा। आहाहा! सिद्धभगवान केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द अनन्त गुण व्यक्त / प्रगट हो गये। पर्याय में, अनन्त गुणों की शक्ति थी, वह व्यक्त हो गयी। आहाहा! सिद्ध को क्या बाकी रहा? अभी चौदहवें (गुणस्थान) में असिद्ध कहलाते हैं। चौदहवें गुणस्थान में भी असिद्ध हैं, क्योंकि चार कर्म का अभी जरा दोष है। स्वयं के कारण से, हों! कर्म के कारण से नहीं। आहाहा! कर्म के कारण से नहीं। यह चार कर्म बाकी हैं, उतना स्वयं की हीनता का निमित्त है। उपादान यह और उसका उपादान वह। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, भगवान ने उसे शुद्धोपयोग का फल कहा है। केवलज्ञान और मोक्ष, यह तो शुद्धोपयोग का फल कहा, प्रभु! और वह शुद्धोपयोग स्व के आश्रय से होता है। आहाहा! बीच में राग का अंश आवे तो प्रवचनसार में भक्ति में आता है। प्रवचनसार में शुरुआत में (आता है)। बीच में राग आवे, परन्तु वह राग मोक्ष का कारण नहीं है। राग को उलंघकर जाता है, तब उसे मोक्षमार्ग होता है। प्रवचनसार शुरुआत की गाथा। आहाहा!

दिगम्बर सन्तों ने तो बहुत स्पष्ट कर दिया है। बहुत स्पष्ट कर दिया। केवली परमात्मा के मार्गानुसारी। सर्वज्ञ भगवान ने कहा, उसका पेट (आशय) खोलकर स्वयं ने कहा है। आहाहा! दुनिया की लाज-शर्म नहीं रखी कि दुनिया इसे कैसे बोलेगी और कैसे मानेगी? दुनिया, दुनिया का जाने। आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने दुनिया की दरकार नहीं की। समाज सुगठित रहेगी या नहीं? ऐसी बहुत सूक्ष्म बात करूँगा तो सम्प्रदायरूप से निभेंगे या नहीं? (इसकी) दरकार नहीं की। आहाहा!

अन्तर भगवान चिदानन्द से भरपूर परिपूर्ण परमात्मा की अस्ति किसी दिन नहीं है

– ऐसा नहीं है। उसकी अस्ति त्रिकाल है। उसका आश्रय करने से मोक्ष का मार्ग शुरु होता है। आहाहा! भले अशुद्धता रही, परन्तु उसके (स्वभाव के) आश्रय से मोक्षमार्ग शुरु होता है और उसे ही शुद्धोपयोग कहकर सिद्ध फल कहा है। वह चौथे से मोक्ष का जो मार्ग कहा, वह शुद्धोपयोग कहा। आहाहा! वे शुद्धोपयोग का इनकार करते हैं कि श्रावक को शुद्धोपयोग होता नहीं; शुद्धोपयोग मुनि को होता है। अरे! प्रभु! शुद्धोपयोग थोड़ा होता है, परन्तु शुद्धोपयोग चौथे से शुरु होता है। स्व का आश्रय हुआ, वही शुद्धोपयोग है। इसके बिना शुद्धोपयोग नहीं हो सकता। आहाहा! दुनिया मानो, न मानो; संख्या रहे, संख्या न रहे, यह सन्तों को कुछ पड़ी नहीं है। वाड़ा बाँधकर संख्या रहे – ऐसी सन्तों को पड़ी नहीं है। वे तो सत्य की बात प्रसिद्ध करके ढिंढ़ोरा पीटते हैं। आहाहा! वे कोई गुप्त बात नहीं रखते। आहाहा!

ऐसा यह भगवान अन्दर आत्मा, जिसे धर्म और शान्ति प्रगटाने के लिये कोई की अपेक्षा की आवश्यकता नहीं है। ऐसा निरपेक्ष तत्त्व प्रभु है न! उसके ही आश्रय से शुरुआत और पूर्णता होती है। शुरुआत और पूर्णता उसके आश्रय से होती है। व्यवहार के आश्रय से कुछ नहीं होता। आहाहा! व्यवहार बन्ध का कारण होता है। परम्परा हेतु कहा, अर्थात् उसे टालकर यह होगा। वह कारण नहीं होगा। आहाहा! यह २२३ (श्लोक पूरा) हुआ।

श्लोक-२२४

(शार्दूलविक्रीडित)

ये लोकाग्र–निवासिनो भवभवक्लेशार्णवान्तं गता,
ये निर्वाणवधूटिकास्तनभराश्लेषोत्थसौख्याकराः।
ये शुद्धात्म–विभावनोद्भव–महा–कैवल्य–सम्पद्गुणाः,
तान् सिद्धानभिनौम्यहं प्रतिदिनं पापाटवीपावकान्।।२२४।।

(वीरछन्द)

जो लोकाग्र वास करते, भव क्लेशोदधि से होकर पार।
मुक्ति वधू-स्तन आलिंगन से जो उत्पन्न सुखामृत खान॥
मुक्ति सम्पदा के गुण मंडित जो शुद्धात्म भावनोत्पन्न।
पाप-वनों को पावक जो सिद्धों को प्रतिदिन करूँ नमन॥२२४॥

[श्लोकार्थः] जो लोकाग्र में वास करते हैं, जो भवभव के क्लेशरूपी समुद्र के पार को प्राप्त हुए हैं, जो निर्वाणवधू के पुष्ट स्तन के आलिंगन से उत्पन्न सौख्य की खान हैं तथा जो शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न कैवल्यसम्पदा के (-मोक्षसम्पदा के) महा गुणोंवाले हैं, उन पापाटवीपावक (-पापरूपी वन को जलाने में अग्नि समान) सिद्धों को मैं प्रतिदिन नमन करता हूँ॥२२४॥

श्लोक- २२४ पर प्रवचन

(श्लोक) २२४।

ये लोकाग्र-निवासिनो भवभवक्लेशार्णवान्तं गता,
ये निर्वाणवधूटिकास्तनभराश्लेषोत्थसौख्याकराः।
ये शुद्धात्म-विभावनोद्भव-महा-कैवल्य-सम्पद्गुणाः,
तान् सिद्धानभिनौम्यहं प्रतिदिनं पापाटवीपावकान्।।२२४।।

आहाहा! वीतरागी मुनि हैं। उन्हें कुछ अमुक कहने में संकोच नहीं आता। वे तो वीतरागी सन्त हैं। पूर्ण वीतराग नहीं, परन्तु जितने अंश वीतरागता हुई है, एक संज्वलन की कषाय रही, बाकी छठवें में वीतराग हैं। उन्हें यह दुनिया की भाषा कहने में कोई बाधा नहीं आती। आहाहा! २२४।

श्लोकार्थ : जो लोकाग्र में वास करते हैं,... सिद्धभगवान का स्थान लोकाग्र है। आहाहा! सिद्धभगवान का स्थान लोकाग्र है, वहाँ रहते हैं। भले ही सिद्ध यहाँ होते हैं। मनुष्यक्षेत्र में सिद्ध होते हैं, परन्तु रहने का स्थान वहाँ है। आहाहा! **जो भवभव के क्लेशरूपी...** भव-भव के क्लेशरूपी **समुद्र के पार को प्राप्त हुए हैं,...** आहाहा! जो भव-भव के क्लेशरूपी, भव-भव का क्लेश। आहाहा! स्वर्ग को भी क्लेश में डाला है। भव-भव में सब आये न? आहाहा! स्वर्ग में भी क्लेश और दुःख है। आहाहा!

यह बात जँचना वह कोई भाग्यवान और पात्र हो, तब जँचती है। यह कोई बातें नहीं हैं। यह कोई वाड़ा-पक्ष नहीं है, यह कोई पन्थ नहीं है। यह तो वस्तु की स्थिति है, वैसा वर्णन भगवान ने किया है। जैसा षट्द्रव्य / वस्तु का स्वरूप है, वैसा वर्णन भगवान ने देखकर किया है। आहाहा! यह कोई पक्ष और कोई पन्थ नहीं है। जैनपन्थ हमारा ऐसा है और तेरा पन्थ ऐसा है - ऐसा नहीं है। तीन लोक के नाथ ने तीन काल-तीन लोक जब देखे, तब वाणी अपने आप स्वतः निकली। आहाहा! वाणी में भी स्व-पर कहने की ताकत होने से (वाणी निकली है)। भगवान में स्व-पर जानने की ताकत, उसका निमित्त; वाणी में स्व-पर कहने की ताकत। वह उपादान स्वयं का स्वयं के कारण। आहाहा! सर्वज्ञ के कारण नहीं। उस वाणी की ताकत स्व-पर कहने की ताकत है। आहाहा!

जो भवभव के क्लेशरूपी समुद्र के पार को प्राप्त हुए हैं,... आहाहा! **जो निर्वाणवधू के...** आहाहा! मोक्षरूपी स्त्री के पुष्ट स्तन... आहाहा! अर्थात् जो पुष्ट गुण प्रगट हुए... आहाहा! जो शक्तिरूप से थे, वे पर्याय में पुष्टरूप से प्रगट हुए। आहाहा! उसे कहते हैं **निर्वाणवधू के पुष्ट स्तन के आलिंगन से...** उस प्रगट दशा का आलिंगन। आहाहा! प्रगट अनन्त गुणों की पर्याय सिद्धों को प्रगट हुई, उसका वे आलिंगन करते हैं। आहाहा! उसे वे स्पर्श करते हैं। आहाहा! भाषा रखने में कोई दरकार नहीं की। **निर्वाणवधू के पुष्ट स्तन...** मोक्षरूपी स्त्री का पुष्ट स्तन अर्थात् उसकी पर्याय पुष्ट हुई है, जो शक्ति में थी। अनन्त शक्ति में तो सबको, अभव्य को भी है। आहाहा! परन्तु जिसकी पर्याय में, जैसा शक्ति का सामर्थ्य था, वैसा पर्याय में प्रगट हुआ, वह पुष्ट हुआ। उस पुष्ट स्तन को जैसे आलम्बे, वैसे इस पुष्ट पर्याय के आलम्बन से अनुभव करते हैं। आहाहा! इस प्रकार का मार्ग। आहाहा! लोक के पार की बात है, भाई! लोगों के पार की बात है, वीतराग का मार्ग। आहाहा!

मुनि ऐसी भाषा कैसे बोले? बापू! वीतरागभाव से यह कथन करके जो वस्तु है, उसे सिद्ध करते हैं। आहाहा! अर्थात् उस पुष्ट स्तन का आलिंगन करते हैं, इसका अर्थ यह कि जिसमें अनन्त शक्तियाँ थी, वे सब पर्याय में प्रगट होकर पुष्ट हो गयी है। आहाहा! जिन्हें उनका आलिंगन है, जिन्हें उनका वेदन और स्पर्श है.. आहाहा! ऐसे सिद्ध भगवान... आहाहा! **उत्पन्न सौख्य की खान हैं...** आलिंगन से उत्पन्न सौख्य की खान है। आहाहा! पर्याय में अनन्त गुणों का सुख प्रगट हुआ है। आनन्द तो प्रगट हुआ है, परन्तु अनन्त गुणों

का सुख (प्रेगट हुआ है)। आहाहा! अस्तित्व का सुख, वस्तुत्व का सुख, सुख का सुख, चारित्र का सुख - ऐसे अनन्त गुणों की शक्ति में से व्यक्त की पर्याय में पुष्ट हुई है। आहाहा! दीपक की भाँति बतलाया है। आहाहा! ऐसी वह खान है।

जो शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न... जो सिद्ध भगवान शुद्धात्मा की भावना। शुभभाव कहीं नहीं लिया। शुद्धात्मा की भावना-शुद्धोपयोग। आहाहा! त्रिकाल भगवान शुद्धात्मा, उसका उपयोग-शुद्धोपयोग; शुभाशुभराग से रहित। आहाहा! **भावना से उत्पन्न कैवल्यसम्पदा के (-मोक्षसम्पदा के) महा गुणोंवाले हैं,...** आहाहा! महागुणोंवाले हैं, कहा। देखो? उस पर्याय को गुणोंवाला कहा। आहाहा! शक्ति-सत्वरूप से, स्वभावरूप से जैसे अनन्त गुण थे, वे सब पर्याय में प्रगट गुणरूप हो गये। आहाहा! **महा गुणोंवाले हैं,...** सिद्ध भगवान तो पर्याय है, परन्तु उस पर्याय को यहाँ गुण कहा गया है। जितने गुण थे, वे गुण सब पर्याय में प्रगट हुए; इसलिए वे सब गुण ही हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

उन पापाटवीपावक (-पापरूपी वन को जलाने में अग्नि समान)... आहाहा! वे सिद्धभगवान जिन्हें पूर्णानन्द की प्राप्ति अनन्त गुण की हो गयी, वे पापरूपी... आहाहा! अग्नि। पापरूपी अटवी, पापरूपी वन। आहाहा! पापरूपी विशाल वन। आहाहा! उसे जलाने में अग्नि-समान है। संसार के पुण्य-पाप आदि वे सब पाप हैं। आहाहा! ऐसा कहा न इसमें? **(-पापरूपी वन को जलाने में अग्नि समान)...** इसमें ऐसा नहीं कहा कि पाप को जलाने में समर्थ है और पुण्य को रखने में। पुण्य और पाप दोनों पाप हैं। आहाहा!

(-पापरूपी वन को जलाने में अग्नि समान) सिद्धों को... आहाहा! ऐसे सिद्ध भगवान को **मैं प्रतिदिन...** प्रत्येक दिन, प्रत्येक दिवस **नमन करता हूँ।** प्रतिक्रमण दो बार करते हैं न! आहाहा! **प्रतिदिन नमन करता हूँ।** भले वह व्यवहार है। ऐसा विकल्प आता है, इसलिए उन सिद्धों को, जिन्हें अनन्त गुणों की पुष्टि प्रगट हो गयी है। आहाहा! उसका जिन्हें आनन्द का आलिंगन-वेदन है, ऐसे सिद्धों को मैं प्रतिदिन वन्दन करता हूँ। उन्हें हमेशा वन्दन करता हूँ। आहाहा! हमेशा का अर्थ वह कहीं समय-समय (वन्दन करता हूँ)—ऐसा नहीं। आहाहा! प्रत्येक दिन में मैं उन्हें वन्दन करता हूँ। कोई दिन सिद्ध को वन्दन किये बिना खाली नहीं है। आहाहा! अग्नि समान, ऐसे सिद्धों को मैं प्रतिदिन, प्रत्येक दिवस। आहाहा! नमन करता हूँ। यह तो व्यवहारभक्ति कही न?

श्लोक-२२५

(शार्दूलविक्रीडित)

त्रैलोक्याग्रनिकेतनान् गुणगुरून् ज्ञेयाब्धिपारङ्गतान्,
मुक्तिश्रीवनितामुखाम्बुजरवीन् स्वाधीनसौख्यार्णवान्।
सिद्धान् सिद्धगुणाष्टकान् भवहरान् नष्टाष्टकर्मोत्करान्,
नित्यान् तान् शरणं व्रजामि सततं पापाटवीपावकान्।।२२५।।

(वीरछन्द)

जो लोकाग्र निवासी, गुणगुरु ज्ञेयोदधि-पारंगत हैं।
मुक्ति-वधू मुखकमल सूर्य हैं निजाधीन सुख सागर हैं॥
अष्ट गुणों को प्राप्त, भवान्तक, अष्ट कर्म के नाशक हैं।
पाप-वनों को पावक शाश्वत सिद्धों की हम शरण गहें॥२२५॥

[श्लोकार्थः] जो तीन लोक के अग्रभाग में निवास करते हैं, जो गुण में भारी हैं, जो ज्ञेयरूपी महासागर के पार को प्राप्त हुए हैं, जो मुक्तिलक्ष्मीरूपी स्त्री के मुखकमल के सूर्य हैं, जो स्वाधीन सुख के सागर हैं, जिन्होंने अष्टगुणों को सिद्ध (-प्राप्त) किया है, जो भव का नाश करनेवाले हैं तथा जिन्होंने आठ कर्मों के समूह को नष्ट किया है, उन पापाटवीपावक (-पापरूपी अटवी को जलाने में अग्नि समान) नित्य (अविनाशी) सिद्धभगवन्तों की मैं निरंतर शरण लेता हूँ॥२२५॥

श्लोक- २२५ पर प्रवचन

(श्लोक) २२५।

त्रैलोक्याग्रनिकेतनान् गुणगुरून् ज्ञेयाब्धिपारङ्गतान्,
मुक्तिश्रीवनितामुखाम्बुजरवीन् स्वाधीनसौख्यार्णवान्।
सिद्धान् सिद्धगुणाष्टकान् भवहरान् नष्टाष्टकर्मोत्करान्,
नित्यान् तान् शरणं व्रजामि सततं पापाटवीपावकान्।।२२५।।

आहाहा! व्यवहार के श्लोक इतने लिये।

श्लोकार्थ : जो तीन लोक के अग्रभाग में निवास करते हैं,... सिद्धभगवान तीन लोक के अग्र में बसते हैं। आहाहा! वे सिद्ध नीचे नहीं आते, परन्तु नीचे के जीव वहाँ जाते हैं, सिद्ध होते हैं। आहाहा! यह एक जगह आता है। सिद्ध है, वे नीचे के जीवों को खींचते हैं, ऊपर ले जाते हैं, परन्तु सिद्ध को कोई नीचे नहीं लाता। आहाहा! **जो तीन लोक के अग्रभाग में निवास करते हैं, जो गुण में भारी हैं,...** सिद्धभगवान गुण में भारी हैं। आहाहा! उनसे भारी कोई अरिहन्त भी नहीं है। अरिहन्त भी अभी असिद्ध हैं। वे तो गुण में भारी हैं।

जो ज्ञेयरूपी महासागर के पार को प्राप्त हुए हैं,... आहाहा! तीन काल-तीन लोक में जाननेयोग्य जितनी चीज़ें हैं, उन जाननेयोग्य चीजों को... आहाहा! ज्ञेयरूपी महासागर। महासागर। अनन्त परमाणु और अनन्त गुण एक-एक परमाणु में। आहाहा! अनन्त जीव और उनसे अनन्त गुणे परमाणु और अनन्त गुणे काल (समय) और अनन्त गुणे आकाश के प्रदेश और... आहाहा! ऐसा जो ज्ञेय का महासागर। ज्ञान में ज्ञात होनेयोग्य ज्ञेयरूपी महासागर के पार को प्राप्त हैं। ज्ञेय की परिपूर्णता को प्राप्त हैं। आहाहा!

जो मुक्तिलक्ष्मीरूपी स्त्री के मुखकमल के सूर्य हैं,... मुक्तिरूपी लक्ष्मी के-स्त्री के मुखकमल के विकास के लिये सूर्य है। उनके-सिद्ध के सब गुण विकसित हो गये हैं। आहाहा! जैसे सूर्य कमल के कारण विकास को प्राप्त हो जाता है, वैसे सिद्ध भगवान के गुण विकास को प्राप्त हो गये हैं। पर्याय में अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त सब विकास को प्राप्त हो गये हैं। आहाहा! **जो स्वाधीन सुख के सागर हैं,...** आहाहा! अपने अन्तर आनन्द के, अतीन्द्रिय आनन्द के सुख के तो सागर हैं। आहा! समुद्र भरा है। भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र भरा है। आहाहा! अरे रे! यहाँ जरा मोसम्बी का पानी पीता हो या आम का अच्छा रस खाता हो तो इसे ऐसा हो जाता है कि आहाहा! कहते हैं कि यह तो सुख का सागर है। यह स्वाधीन सुख और (वह) तो पराधीन मानी हुई कल्पना है। उस आम के रस को तो आत्मा स्पर्श भी नहीं करता और कल्पना करता है कि मुझे सुख होता है। आहाहा!

जो स्वाधीन सुख के सागर हैं, जिन्होंने अष्टगुणों को सिद्ध (-प्राप्त) किया है,... सिद्ध भगवान ने आठ गुण प्राप्त किये हैं। आहाहा! **जो भव का नाश करनेवाले हैं...** भव

का नाश करनेवाले हैं अर्थात् भव है नहीं। **तथा जिन्होंने आठ कर्मों के समूह को नष्ट किया है,...** आठ कर्म के ढ़ेर का जिन्होंने नाश किया है। कर्म को आत्मा नाश करे! आत्मा अपने में स्थिर हो, वहाँ कर्म पर्याय बदल जाती है, उसे 'नाश करता है' - ऐसा कहा जाता है। आहाहा!

उन पापाटवीपाक (-पापरूपी अटवी को जलाने में अग्नि समान)... जो पापरूपी अटवी अर्थात् वन को जलाने में अग्नि समान **नित्य (अविनाशी)...** नित्य प्रभु अविनाशी। आहाहा! भले पर्याय पलटती है, परन्तु वह कायम रहनेवाले हैं, ऐसे सिद्ध भगवन्तों की **(अविनाशी) सिद्धभगवन्तों की मैं निरंतर शरण लेता हूँ।** सिद्ध भगवन्तों की मैं निरन्तर शरण ग्रहण करता हूँ। आहाहा! दूसरा कोई शरण नहीं है। विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)